अध्याय-9

राजविद्याराजगुह्ययोग-नामक 9वाँ अ0।।

[1-6 प्रभावसहित ज्ञान का विषय]

श्रीभगवानुवाचः-इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्यामि अनसूयवे। ज्ञानं विज्ञानसहितं यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसे अशुभात्।। 9/1

अनसूयवे ते विज्ञानसहितं	{दैवीगुणों में} दोष न देखने वाले तुझको योग रूपी विशेषज्ञान=विज्ञान सहित,
गुह्यतमं इदं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि तु	{बी.के. के बेसिक ज्ञान से भी} अत्यन्त गुप्त इस {एडवांस गीता-} ज्ञान को बताऊँगा कि
यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे	जिसको जानकर पाप/दुःख से {ढाई हज़ार वर्ष के स्वर्ग में} मुक्त हो जाएगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रं इदं उत्तमं। प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुं अव्ययं।। 9/2

इदं राजविद्या राजगुह्यं	यह {एडवांस गीताज्ञान} राजाओं की राजविद्या है, उत्तम राजाई का रहस्य है, {अत्यंत}
पवित्रं उत्तमं	पवित्र है, {विधर्मियों वा विदेशियों की अपेक्षा} सर्वोत्तम {ज्ञान} है, {सिर्फ इस पु. संगम में}
प्रत्यक्षावगमं कर्तुं	{आए साक्षात् ईश्वर से प्रश्नोत्तरपूर्वक} प्रत्यक्ष जाना जाता है, {सहज पालन} करने के लिए
सुसुखं अव्ययं धर्म्यं	अत्यंत सुखदायी है, {सूर्यवंशियों में} अविनाशी है {और देव-आत्माओं के सत्य-सनातन} धर्मानुकूल {भी} है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्य अस्य परन्तप। अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। 9/3

परंतप अस्य धर्मस्य अश्रद्दधानाः	हे शत्रुतापी अर्जुन! इस {सच्ची गीतावर्णित} धर्म में अश्रद्धालु {ठठ विधर्मी या विदेशी}
पुरुषा मां अप्राप्य मृत्युसंसार-	लोग मुझ को न पाकर, मृत्युलोकीय {कृष्णगति वाले अज्ञानयुक्त मोह-अंधकार में},
वर्त्मनि निवर्तन्ते	{हिंसक राक्षसों के दक्षिणायन} मार्ग में, {ढाई हज़ार वर्ष के नरकलोक में पुनः} लौट जाते हैं। {गीता 8-25}

मया ततं इदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न च अहं तेषु अवस्थितः।। 9/4

मया अव्यक्तमूर्तिना इदं सर्वं	मेरी अव्यक्त {स्थिति की निराकारी लिंग-} मूर्ति {मान महादेव} द्वारा यह सारा {जड़-जंगम}
जगत् ततं सर्वभूतानि	जगत {मानव-बीज/बाप से वटवृक्ष जैसा} विस्तृत है। {अतः} सभी प्राणी-समुदाय
मत्स्थानि चाहं तेषु नावस्थितः	मेरे {लिंग• बीज} में स्थित हैं; किन्तु मैं {शिव} उन {प्राणियों} में {सर्वव्यापी} नहीं हूँ।

'नाहं तेषु ते •मयि' (गी.7/12) (क्योंकि अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष अनादि है तो अतिदुर्लभ 1 मुखी रुद्राक्ष बीज बाप आदिदेव/आदम• भी अविनाशी है। जैसे देह में अणुरूप आत्मा अविनाशी है वैसे यह विराट पुरुष भी सृष्टि वृक्ष में सदा रहता है)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगं ऐश्वरं। भूतभृत् न च भूतस्थो मम आत्मा भूतभावनः।। 9/5

मे ऐश्वरं योगं पश्य	मेरे ऐश्वर्यवान् योग {-ऊर्जारूप निराकारी लिंग महादेव} को देख, {जहाँ आकाशादि जड़}
भूतानि च मत्स्थानि न	पंचभूत भी मेरे में स्थित नहीं। {सोमनाथ में शिवसमान आत्मज्योति हीरा/देहस्मृतिहीन}
भूतभावनः	{साकारी देह वाली अव्यक्तमूर्ति, योग की खुराक से साकारी} प्राणियों को पैदा करने वाली, (गी.3-14)
भूतभृत् मम	{सच्चे एडवांस गीता-ज्ञान से} प्राणियों का भरण-पोषणकत्री मेरी {अजन्मा, अगर्भा,अकर्ता ,अभोक्ता}
आत्मा भूतस्थो च न	{सदा निराकारी ज्योतिबिंदु} आत्मा {उन जड़-जंगम योगूर्जा भरे} प्राणियों में स्थित भी नहीं है।

यथा आकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय।। 9/6

यथा नित्यं सर्वत्रगः महान् वायुः	जिस तरह निरंतर सब ओर जाने वाला {जड़त्वमय अदृश्य} महान {प्राण} वायु {दिवता}
आकाशस्थितः तथा सर्वाणि	{परमब्रह्म} आकाश में स्थित है, वैसे ही सभी {सत-त्रेता के स्वर्गीय+द्वापुर-कलि के नारकीय}

भूतानि मत्स्थानि इत्युपधारय	प्राणी मेरे स्थान {लिंगमूर्ति परमाकाश} में स्थित हैं।←ऐसे {मानव-बीज महादेव में वट-वृक्ष के बीज से सृष्टिवृक्ष का विश्वास} धारण कर ले।

[7-10 जगत् की उत्पत्ति का विषय]

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकां। कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहं।। 9/7

कौन्तेय कल्पक्षये सर्व	हे कुन्ती के पुत्र! कल्पान्तकाल में सभी {दिव-दानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि जड़-जंगम पदार्थ}
भूतानि मामिकां प्रकृतिं	{सहित} प्राणीमात्र मेरी {शिवसमान पराज्योति हीरा+लिंगरूप अपरा प्रकृति की} प्रकृष्ट रचना
यान्ति कल्पादौ	{परमाकाश रूप परंब्रह्म-ज्योति} में समा जाते हैं {और} कल्प के {16 कला सतयुगी} आदिकाल से
अहं तानि पुनः विसृजामि	मैं {शिवबाबा} उन्हें पुनः {अग्रिम कल्प की चतुर्युगी में} सृजन के लिए छोड़ता हूँ।

प्रकृतिं स्वां अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्रामं इमं कृत्स्नं अवशं प्रकृतेः वशात्।। 9/8

स्वां प्रकृतिं अवष्टभ्य	मैं अपने {मूर्तिमंत महादेव के लिंग/देहरूप अपरा} प्रकृति को {अपने} वश में रखकर {इस}
प्रकृतेः वशात् अवशं इमं कृत्स्नं	{पतनोन्मुखी} प्रकृति की आधीनता से पराधीन इस {संसार के} सम्पूर्ण {जड़-चेतन}
भूतग्रामं पुनः-2 विसृजामि	प्राणियों को हर कल्प में {परंब्रह्मा रूप परमाकाश द्वारा सृजनार्थ} छोड़ता हूँ।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय। उदासीनवत् आसीनं असक्तं तेषु कर्मसु।। 9/9

च धनंजय तानि कर्माणि मां	और हे ज्ञानधनजयी अर्जुन! वे कर्म मुझ {सदाशिव आत्मज्योति रूप में स्थिर अकर्ता} को,
उदासीनवत् आसीनं न	उदासीन समान {अभोक्ता} रहने वाले को {पतिततम कामी काँटा रूप तन में भी} नहीं
निबध्नन्ति तेषु कर्मसु असक्तं	बाँधते; {क्योंकि मैं} उन कर्मों में {सदा देहभान रहित विदेही, निराकारी होने से} अनासक्त हूँ।

मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं। हेतुना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।। 9/10

कौन्तेय मयाध्यक्षेण	हे कुन्ती-पुत्र! {कल्पादिकाल की शूटिंग में} मेरी अध्यक्षता द्वारा {अर्जुन/आदम/शंकर की},
प्रकृतिः सचराचरं	{मुझ शिवसमान हीरा जैसी बनी उसकी आत्मज्योति+लिंग/देह}=प्रकृति जड़-चेतन सहित
सूयते अनेन हेतुना	{बीजरूप रुद्राक्ष गणों को} पैदा करती है; इस कारण से {अधोमुखी मानवीय सृष्टिवृक्ष पीपल का}
जगत् विपरिवर्तते	जगत् विपरीति• गति में {ऊर्ध्वमुखी परमात्म रूप हीरो पार्टधारी के योगबल द्वारा} परिवर्तित होता है।

•{अभी सबको नं. वार योगबल से 84 के चक्र में उल्टी सीढ़ी चढ़नी ही पड़ेगी; क्योंकि सभी भोगी देव+असुरों ने अपनी-अपनी ज्योतिबिंदु आत्मा को भोगी जन्मों में दैहिक इन्द्रियों से सुख भोगते-2 उत्तरोतर तीव्र दुःख की अधोगति में डाला है। अतः अभोक्ता सदाशिव ज्योतिबिंदु को आदम में पहचान कर याद करना ही है}

[11-15 भगवान का तिरस्कार करने वाले आसुरी प्रकृति वालों की निन्दा और दैवी प्रकृति वालों के भगवद्भजन का प्रकार]

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं। परं भावं अजानन्तो मम भूतमहेश्वरं।। 9/11

मूढा मानुषीं तनुं आश्रितं	मूर्ख लोग अर्जुन/आदम के {साधारण मानवीय और मुकर्रर} शरीर का आधार लेने वाले
मां भूतमहेश्वरं अवजानन्ति	मुझ प्राणियों के महेश्वर {शिवबाप के व्यक्त स्वरूप आदम} की अवज्ञा करते हैं,
मम परं भावं अजानन्तः	{आदित्यों की यादगार में} मेरे श्रेष्ठतम {ज्योतिर्लिंग} परमात्मभाव को {भी पूरी तरह} नहीं जानते।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः। राक्षसीं आसुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।। 9/12

मोघाशा मोघकर्माणः मोघज्ञाना	{फोकट का रिश्वती धन मिलने से} व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म {और} व्यर्थ ज्ञान वाले,

विचेतसः राक्षसीमासुरीञ्च मोहिनीं	{रावण संप्रदाय जैसी} विपरीत• बुद्धि वाले लोग,राक्षसी, आसुरी और मोहित करने वाली
प्रकृतिमेव श्रिताः	{तामसी} प्रकृति {के स्वभाव} को ही धारण करते हैं, {शिवसमान बने परमात्मा को पूरा भूल जाते हैं।}

•{दिल्ली- जैसी विश्वप्रसिद्ध राजधानी की बड़ी-2 आलीशान बहुमंजिला, सच्ची गीता के इसी धार्मिक-आध्यात्मिक कार्यों में लगाई गई बीसियों वर्ष पुरानी इमारतों को खण्डहर बनाने के बाद, उसी पर लाखों का प्रॉपर्टी टैक्स डकारने के इच्छुक और पचासियों बालिग कन्याओं को रातोंरात रिस्क्यू कराने के बहाने 4-4 माह तक बंधक बनाने और उन्हों के मना करने पर भी कुमारीत्व के परीक्षण का जीजान से प्रयास करने के व्यर्थ कर्मी बन जाते हैं। धर्मराज के दिल्ली दरबार में इनका क्या हाल होगा?}

महात्मानः तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिं अव्ययं।। 9/13

तु पार्थ दैवीं प्रकृतिं आश्रिताः	किंतु हे पृथ्वीराज! दैवी परा प्रकृति के आश्रित {उत्तुङ्ग कैलाशवासी}
महात्मानः भूतादिं अव्ययं मां	{रुद्रगण रूप} महात्माएँ, प्राणियों के आद्यविनाशी मुझ {शिवबाबा} को {अच्छी तरह}
ज्ञात्वा अनन्यमनसो भजन्ति	{पु.संगम में} पहचानकर अव्यभिचारी मन से {निश्चिन्त होकर} याद करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः। नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। 9/14

सततं मां भक्त्या कीर्तयन्तः च	{वे} निरंतर मेरा श्रद्धाभक्तिपूर्वक {अविचल} गुणगान करते हुए और {यतेन्द्रिय बन}
यतन्तः दृढव्रताः च नमस्यन्तः	यत्नपूर्वक {ब्रह्मचर्य में} दृढ़व्रत रहने वाले तथा विनम्र रहते हुए {ऐसे निर्मानचित्त}
नित्ययुक्ता मां उपासते	सदायोगीजन मुझ {महाकाल} को {कल्याणकारी ड्रामा समझ लगन से} उपासना करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन च अपि अन्ये यजन्तो मां उपासते। एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखं।। 9/15

अन्ये अपि एकत्वेन च पृथक्त्वेन	दूसरे {सामान्य भक्त लोग} भी अद्वैत भाव से अथवा द्वैत भाव से {भी इस अविनाशी}

ज्ञानयज्ञेन विश्वतोमुखं	{अश्वमेध रुद्र} ज्ञानयज्ञ से विश्व {मान्य पंच} मुखी {ब्रह्मा सो विष्णु/पंचमुखी• महादेव समझकर}
यजन्तः मां बहुधा उपासते	यज्ञसेवा करते हुए मेरी {ही} अनेक तरह से {जीसिस-सिद्धार्थादि मूर्तियों में} उपासना करते हैं।

{•पंचानन ब्रह्मा सो पंचमुखी महादेव सो चतुर्भुजी विष्णु। विष्णु की 4 सहयोगी आत्माएँ ही जड़ भुजारूप में दिखाई हैं; किंतु 5वाँ मुख रूप चतुर्भुजी ब्रह्मा का चालक आदिदेव-आत्मा भृकुटि में दिखाई नहीं देती। बाकी अभोक्ता शिव निराकार ज्योति तो पुरुषोत्तम संगमयुग में सदा पंचानन महादेव के तीसरे शिवनेत्र से विराजमान है ही।}

[16-19 सर्वात्मरूप से प्रभावसहित भगवान के स्वरूप का वर्णन]

अहं क्रतुः अहं यज्ञः स्वधा अहं अहं औषधं। मन्त्रः अहं अहं एव आज्यं अहं अग्निः अहं हुतं।। 9/16

अहं क्रतुः अहं यज्ञः अहं	मैं यज्ञराज हूँ। मैं {मन-वचनादि का} ज्ञानयज्ञ हूँ। {परमात्मस्मृति रूप} मैं {शिव+बाबा}
स्वधा अहं औषधं	{ही आत्मा की शक्तिदाई} हवि हूँ। मैं {रोगी/विकारी आत्माओं की ज्ञान-योगरूप} औषधि हूँ।
अहं मंत्रः अहं आज्यं	मैं {मन्मनाभव का} महामंत्र हूँ। मैं {श्रेष्ठतम अव्यभिचारी मनसा द्वारा स्मृति रूप} घृत हूँ।
अहं अग्निः अहं एव हुतं	मैं ज्ञान-योगाग्नि हूँ। मैं ही {तन-मन-धन-समय-सम्बंध-सम्पर्क की त्यागरूप} आहुति हूँ।•

•{आदिदेव बना आदम ही सारी जड़-चेतन सृष्टि का बीज है, जिसमें सारा ही विराटपुरुष या सृष्टिवृक्ष समाया हुआ है।}

पिता अहं अस्य जगतो माता धाता पितामहः। वेद्यं पवित्रं ओङ्कारः ऋक् साम यजुः एव च।। 9/17

अस्य जगतः पिता	इस जगत् का {1 मात्र बीजरूप आदम/अर्जुन के तन द्वारा} जगत्पिता {शिवबाबा+सच्चीगीता ज्ञानामृत से}
माता धाता	{विष्णु की वामांगी भुजा लक्ष्मी रूपा पालनकर्त्री/परब्रह्मा रूपा} माता, {कर्मफल} विधाता {युधिष्ठिर रूप चौमुखी ब्रह्मा धर्मराज},
पितामहः	{वैसे ही बुद्ध- क्राइस्टादि धर्मपिताओं जैसे} बापों का बाप/बाबा {आदम द्वारा सारे मनुष्यमात्र का बीज हूँ।}
वेद्यं पवित्रं ओंकारः च	जानने योग्य पवित्र ऊँकार-{त्रिमूर्ति शिवबाबा} और {परमप्रसिद्ध वैदिक धर्मग्रंथों में}

ऋक् साम यजुः अहं एव	ऋक्-साम-यजुर्वेद {का मान्य 'ज्ञान-भंडार' निराकार सो साकार शिवबाबा} मैं ही हूँ।

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्। प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजं अव्ययं।। 9/18

गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः	{मैं शिवबाबा ही} गति {मुक्ति या सद्गति}, पति/स्वामी, साक्षी, {परम} आश्रय,
शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं	शरणागतवत्सल, मित्र, उत्पत्ति, विनाश, स्थिति हूँ। {त्रिमूर्ति शिवबाबा निर्मित}
निधानं अव्ययं• बीजं	{समूची जड़-चेतन सृष्टि का साकार} गोदाम = अविनाशी {मानवीय अश्वत्थवृक्ष का} बीज {हूँ}।

•{इस सृष्टि में (शिव+बाबा सिवा) सदाकायम कोई चीज़ है नहीं। (मु.ता.2/1/75 पृ.3 अंत) महाविनाश में निराकार सदाशिव ज्योति समान अव्यक्तमूर्त महादेव हीरो ही चतुर्युगी में सदाकायम है जिसे कोई नहीं पहचान पाता। मैं शिवज्योति+साकार महादेव का मेल=ज्योति+लिंग ही मनुष्य-सृष्टि रूपी अश्वत्थ वृक्ष का अविनाशी बीज-रूप बाप हूँ।}

तपामि अहं अहं वर्षं निगृह्णामि उत्सृजामि च। अमृतं चैव मृत्युश्च सत् असत् च अहम् अर्जुन।। 9/19

अहं तपामि अहं	मैं {शिव प्रकाश भंडार ज्ञानसूर्य ही विवस्वत बन संगम में} तप रहा हूँ। मैं {ज्ञानजल की}
वर्षमुत्सृजामि च निगृह्णामि	बरसात छोड़ता हूँ और {1 मात्र मैं कपिल/अग्नि ही मंथन करके ज्ञान-} वर्षा खींचता हूँ।
चैव अमृतञ्च मृत्युश्च	और मैं ही {सागर-मंथन का ज्ञान-} अमृत हूँ और मृत्यु {रूप विष} भी हूँ। {हे ज्ञानार्जनकर्ता}
अर्जुन सत् असत् अहं	अर्जुन! सदा सत्य, {और 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'-अनुसार} असत्य {भी} मैं {शिव+बाबा ही हूँ।}

{(दुनियाँ की) कोई ऐसी बात नहीं जो तेरे (जगत्पिता/आदम) पर लागू न हो।(मु.ता.14-4-68; 5.5.69 पृ.3 अंत)}

[20-25 सकाम और निष्काम उपासना का फल]

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते। ते पुण्यं आसाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।। 9/20

त्रैविद्या	{पुरुषोत्तम संगमयुग के जो ब्रह्मावत्स ब्राह्मण-देवता-क्षत्रिय} तीन धर्मों की {स्थापना वाली} विद्याओं के जानकार
सोमपाः	{ज्ञानचन्द्रमा रूप संगठित चतुर्मुखी ब्रह्मा से शिवप्रदत्त} सोमरस पीते हैं, {उसी मीठे-2 ज्ञान के मंथन से}
पूतपापा यज्ञैः मां इष्ट्वा	पापमुक्त {ब्राह्मण} यज्ञ-सेवाओं से मुझ {शिवबाबा} को प्रसन्न करके {सतयुग-त्रेता में आधाकल्प}
स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ते दिवि	स्वर्गीय श्रेष्ठ गति {पाने} की प्रार्थना करते हैं, वे दिव्य लोकों में {21 पीढ़ी के जन्मों तक}
पुण्यं सुरेन्द्रलोक मासाद्य	{भी} पवित्र सुरेन्द्रलोक को पाकर {सुखधाम में लेशमात्र भी दुःख-अशान्ति न भोगते हुए}
दिव्यान् देवभोगानश्नन्ति	{सूर्यवंशी कलातीत विष्णुरूप &16 कलाबद्ध कृष्णचन्द्र के स्वर्ग में} देवों के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः गतागतं कामकामा लभन्ते।। 9/21

ते तं विशालं स्वर्गलोकं	वे {त्रैविद्या•-ज्ञाता ब्रह्मावत्स} उस {2500 वर्षीय} विशाल {उत्तरायणी} स्वर्गलोक को
भुक्त्वा पुण्ये क्षीणे	भोगकर, {पु. संगमी शूटिंगकृत यज्ञसेवा के} पुण्य क्षीण होने पर {2500 वर्ष के दीर्घतम}
मर्त्यलोकं विशन्ति	{द्वैतवादी द्वापर-कलियुगी नर निर्मित नारकीय} मृत्युलोक में {अपने दुष्कर्मों से ही} प्रवेश पाते हैं।
एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः	ऐसे {•ब्राह्मण सो.-देवता और-क्षत्रिय, इन} 3 धर्मों की {विधाओं के} अनुकरणकर्ता, {पु. संगमयुग में}
गतागतं कामकामा लभन्ते	भूत-भविष्य {संबन्धी} काम्य कामनाओं का लाभ {सत्य सनातन धर्म में ही} पाते हैं।

अनन्याः चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहामि अहं।। 9/22

ये अनन्याः जनाः मां चिन्तयन्तो	जो अव्यभिचारी लोग मेरी {ज्योतिस्वरूप+लिंगरूप की प्रवृत्ति में} ध्यानमग्न हुए,
पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां	सर्वसमर्पित उपासक हैं, {बेहद ड्रामा के नियमप्रमाण} उन निरन्तर सम्पूर्ण योगियों के
योगक्षेमं अहं वहामि	अप्राप्त {दुर्लभ वस्तुओं} की प्राप्ति और उनकी रक्षा का भार मैं {कल्पान्त के •महाविनाश में} वहन करता हूँ।

•{"बाबा की सर्विस में लग जाने से तुम कब (अकाल, दुकाल आदि में भी) भूख नहीं मरेंगे।"(मु.ता.16.10.77 पृ.3 मध्य)}{'कयामत में खुदा के बंदे मौज में रहेंगे'। (कुरान)} (परमपिता+परम आत्मा को पहचानेंगे तब ही ऐसा होगा।)

ये अपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धया अन्विताः। ते अपि मां एव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकं।। 9/23

कौन्तेय ये	हे {देहभान नाशिनी 'कुंतयति दारयति देहं' ऐसी} कुन्ती के पुत्र! जो {शिवबाबा के अलावा कोई}
अन्यदेवता भक्ता अपि श्रद्धया	अन्य {ब्रह्मा-विष्णु-कलाबद्ध लक्ष्मी-ना. आदि देवी-} देवताओं के भक्त भी श्रद्धा से
अन्विताः यजन्ते ते अविधिपूर्वकं	भरकर यज्ञसेवा करते हैं, वे {एडवांस सच्ची} गीता-विधिविधान रहित {रुद्रयज्ञसेवी}
अपि मां एव यजन्ति	{मंदभक्त} भी {अव्यक्तमूर्त बने विदेहीरूप} मेरे {ज्योतिर्लिंग की} ही यज्ञसेवा करते हैं।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुः एव च। न तु मां अभिजानन्ति तत्त्वेन अतः च्यवन्ति ते।। 9/24

हि अहं एव सर्वयज्ञानां	क्योंकि मैं {शिव} ही {नीची 7 कुरियों के ब्राह्मण सो अर्धदेवों की} सभी यज्ञ-सेवाओं का
प्रभुः च भोक्ता तु च ते	{अविनाशी महादेव-मूर्ति द्वारा} स्वामी और उपभोग करने वाला हूँ, तो भी वे {अधूरे ब्रह्मावत्स}
मां तत्त्वेन न	{कर्मेन्द्रियों की भागदौड़ के यज्ञसेवी} मुझ {साधारण आदम तनधारी शिवबाबा} को वास्तविक रूप से नहीं
अभिजानन्ति अतश्च्यवन्ति	पहचान पाते; अतः {द्वापर से द्वैतवादी स्लामी-बौद्धी आदि विधर्मियों में} पतित हो जाते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनः अपि मां।। 9/25

देवव्रता देवान् यान्ति पितृव्रताः	{कलाबद्ध} देवों के भक्त देवात्माओं को पाते हैं। {बेहद पिता सिवा अन्य के} पितृभक्त
पितॄन्यान्ति भूतेज्या भूतानि यान्ति	{अपने} पितरों को पाते हैं। भूत-प्रेतों के पुजारी भूत-प्रेत योनियों को पाते हैं।
मद्याजिनः मामपि यान्ति	मेरे प्रति {ज्ञान-यज्ञ की} सेवा करने वाले मेरे {जैसे स्वाधीन• राजाई भाव} को ही पाते हैं।

{•एकमात्र शिवबाबा के सिवा सभी पराधीन बनाते हैं। "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। करि विचार देखहु मन माहीं।।"}

[26-34 निष्काम भगवद्भक्ति की महिमा]

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तत् अहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः।। 9/26

यः पत्रं पुष्पं फलं तोयं	जो {निर्धन या कोई भी} व्यक्ति पत्ते, पुष्प, फल, जल {अथवा कोई भी प्रकार की यज्ञउपयोगी}
मे भक्त्या प्रयच्छति	{या मानवीय कम उपयोगी सामान्य चीज़ को भी} मुझे दिली भावना से प्रदान करता है {←ऐसे}
प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतं	{उस श्रद्धा भरे} प्रयत्नवान की भावनापूर्वक लाई गई {मेरे ग्रहण करने योग्य भीलनी जैसी}
तदहं अश्नामि	उस {झूठी झाठी श्रद्धाभरी भेंट} को मैं {बेहद विषपायी शिवबाबा प्रसन्नता से समयानुसार} ग्रहण कर लेता हूँ।

यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणं।। 9/27

कौन्तेय यत्करोषि यदश्नासि	हे कुन्ती-पुत्र! जो {कर्म तू} करता है, जो {तू} खाता है, {पीता है या अपने उमंग- उत्साह से}
यत् जुहोषि यत् ददासि यत्	जो {ज्ञान-} यज्ञसेवा करता है, जो देता है {वा} जो {आत्मस्टार की स्मृति का सर्वोच्च}
तपस्यसि तत् मदर्पणं कुरुष्व	{रूहानी} तप करता है, वह {सब} मुझ {एकमात्र अव्यक्तमूर्ति शिवबाबा} को अर्पण कर।

शुभाशुभफलैः एवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मां उपैष्यसि।। 9/28

एवं शुभाशुभफलैः कर्मबंधनैः	इस प्रकार शुभ और अशुभ फल वाले कर्मों के बंधनों से {स्वर्ग में आधाकल्प के लिए}
मोक्ष्यसे विमुक्तः संन्यास-	मुक्त हो जाएगा। {उनसे} पूरा ही छूटा हुआ {यथायोग्य} समुचित त्यागी {और मेरे}
योगयुक्तात्मा मामुपैष्यसि	{से} योगयुक्त आत्मा मुझ {ईश्वर के श्रेष्ठ, स्वाधीन राजाईभाव} को {ही} प्राप्त करेगा।

{राजयोग से बने राजा स्वाधीन होते हैं; किसी के आधीन नहीं रहते। नं.वार नरक बनाने वाले नर आधीन ही बनावेंगे! स्व माने ही अपनी आत्मा और आत्मा का बाप परमपिता+परमात्मा राजयोगेश्वर}

समः अहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यः अस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु च अपि अहं।। 9/29

अहं सर्वभूतेषु समः मे न	मैं, {श्रेष्ठ हों या निष्कृष्ट} सब प्राणियों में समान आत्मभाव वाला हूँ। मेरे लिए न {कोई राक्षसी भाव वाला}
द्वेष्यः न प्रियोऽस्ति तु ये मां भक्त्या	द्वेष योग्य है, न {दैवी भावना वाला} प्यारा है; किंतु जो मुझको {श्रद्धा} भक्तिभाव से
भजन्ति ते मयि च तेषु अहं अपि	याद करते हैं, वे मुझमें हैं और उनमें {उन्हीं के भाव वा स्मृतिपूर्वक} मैं भी हूँ।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मां अनन्यभाक्। साधुः एव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः हि सः।। 9/30

चेत् सुदुराचारो अपि अनन्यभाक्	यदि {कोई अजामिल जैसा} अत्यन्त दुराचारी भी अव्यभिचारी भाव से {श्रद्धापूर्वक}
मां भजते स साधुः एव मन्तव्यः	मुझे याद करता है, {तो} वह {भी एक निष्ठ होने से} सत्पुरुष ही मानने योग्य है;
हि सः सम्यक् व्यवसितः	क्योंकि वह {शिवबाबा में} समुचित निश्चयवान् है। {बाकी अनिश्चयी देह से नष्ट हो जावेंगे।}

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। 9/31

क्षिप्रं धर्मात्मा भवति शश्वत्	{दृढनिश्चयी} जल्दी ही धर्मात्मा बन जाता है, {सम्पूर्ण चतुर्युगी में भी} शाश्वत
शांतिं निगच्छति कौन्तेय प्रति	शान्ति {नं. वार } पा {ही} लेता है। हे कुंती-पुत्र! {ऐसा अव्यभिचारी योगी,} निश्चय {ही}
जानीहि मे भक्तः न प्रणश्यति	जानो {वह} मेरा भक्त {नारकीय द्वापुर-कलियुग में भी धर्मभ्रष्ट}/नष्ट नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये अपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्याः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति परां गतिं।। 9/32

हि पार्थ ये अपि स्त्रियः वैश्याः	क्योंकि हे पृथ्वीपति! {इस दुःखी दुनियाँ में} जो भी {पूर्वजन्मकृतानुसार} स्त्री, वैश्या

तथा शूद्राः पापयोनयः स्युः तेऽपि	तथा शूद्र {जैसी} पापयोनियाँ {भी} हों, वे भी {पूर्वजन्मकृत कोई श्रेष्ठ कर्मों से}
मां व्यपाश्रित्य परां गतिं यान्ति	मेरा आश्रय लेकर {इसी जन्म में विष्णुरूप वैकुण्ठ की} परमगति को पाते हैं।

किं पुनः ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयः तथा। अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व मां।। 9/33

पुनः पुण्या ब्राह्मणाः तथा भक्ता	फिर पुण्यशील {सूर्यवंशी} ब्राह्मण-देवों का तथा भक्त {प्रवरक्षत्रिय जनों अथवा}
राजर्षयः किं इमं अनित्यं असुखं	राजर्षियों का क्या {कहना! इसीलिए} इस क्षणभंगुर {और} दुःखी {नारकीय},
लोकं प्राप्य मां भजस्व	{राक्षसी-हिंसक} लोक को पाकर, मुझ {एकमात्र सदासुखदायी अव्यक्तमूर्ति शिवबाबा} को याद कर।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मां एव एष्यसि युक्त्वा एवं आत्मानं मत्परायणः।। 9/34

मन्मना मद्याजी मद्भक्तः भव मां	{तू} मेरे में मन लगा, मेरी यज्ञसेवा कर, मेरा भक्त बन जा। मुझ {शिवबाबा} को
नमस्कुरु एवं आत्मानं युक्त्वा	श्रद्धा से झुक जा! इस प्रकार {अव्यभिचारी मन-बुद्धि रूप} आत्मा का लगाव लगाय
मत्परायणः मां	मेरी {अव्यक्तमूर्ति के} आश्रित हुआ मुझ {स्वाधीन, सर्वोत्तम शासक से राजयोग द्वारा राजाई भाव} को
एव एष्यसि	ही पाएगा, {पुरुषोत्तम संगमयुगी शूटिंग में भी किसी व्यक्ति के आधीन नहीं बनेगा।}